ISSN 2347-4041

संस्कार चेतना
संस्कार चेतना

प्रथमां विश्ववारां तां संस्कृतिं स्वयुगानुगाम्। संस्कारचेतना धत्ते वसुधैव कुटुम्बकम्।।

वर्ष -6
अंक-1-3
सितम्बर-नवम्बर, 2016

साहित्य, ...
वाणिज्य, मा...
एवं विज्ञान विषयों का

# संस्कार चेतना

संस्कार चेतना
संस्कार चेतना
संस्कार चेतना
संस्कार चेतना
संस्कार चेतना
संस्कार चेतना
संस्कार चेतना
संस्कार चेतना
संस्कार चेतना
संस्कार चेतना
संस्कार चेतना
संस्कार चेतना
संस्कार चेतना
संस्कार चेतना
संस्कार चेतना
संस्कार चेतना
संस्कार चेतना
संस्कार चेतना
संस्कार चेतना

## अन्तरराष्ट्रीय मूल्यांकित शोध पत्रिका (मासिक)

## INTERNATIONAL REFEREED RESEARCH JOURNAL

मार्गदर्शक:
डॉ. हिम्मत सिंह सिन्हा विद्यावाचस्पति
पूर्व सदस्य, भारतीय दर्शन अनुसंधान परिषद्

प्रधान संपादक
डॉ. विजय दत्त शर्मा

संपादक
डॉ. केवल कृष्ण

"उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्"

शोध चेतना अकादमी
'वसुधैव कुटुम्बकम्' संस्कृति सेवा आयाम (पंजी.)

संस्कार चेतना अन्तरराष्ट्रीय मूल्यांकित शोध पत्रिका
ISSN : 2347-4041
वर्ष 6, अंक–1–3, सितम्बर–नवम्बर 2016

# मौर्योत्तर काल से गुप्त काल तक वस्त्र उद्योग का संगठनात्मक स्वरूप

**डॉ. मोहन लाल**
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास
आई.जी.एन. कॉलेज,
लाड़वा, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

**शोध-लेख सार**

प्राचीन भारत में सहकारिता की भावना के फलस्वरूप व्यापार तथा सभी उद्योगों के समान वस्त्र निर्माण से सम्बन्धित सभी शिल्पों जैसे कताई-बुनाई, रंगाई, धुलाई व सिलाई से जुड़े शिल्पकारों ने अपने-अपने शिल्प को विकसित और सुव्यवस्थित करने तथा उनकी सुरक्षा और उन्नति के लिए अपने-अपने संगठन बनाये। वस्त्र उद्योग से जुड़े ये श्रेणी संगठन समय के साथ बहुत समृद्ध, प्रभावी और विकसित बन गए। विवेच्य काल में वस्त्र निर्माण से जुड़े सभी शिल्प संगठित हो चुके थे। कुषाण काल में वस्त्र निर्माण से सम्बन्धित श्रेणी संगठनों से मौर्यकालीन राजकीय नियंत्रण एवं प्रतिबंध हट जाने के बाद उन्हें राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ, जिससे इन संगठनों की प्रतिष्ठा में इतनी वृद्धि हुई कि साधारण लोगों के साथ-साथ राजा भी इन संगठनों के पास धरोहर के रूप में पैसा रखने लगे। गुप्तकाल में शांति और सुव्यवस्था तथा स्मृतिकारों के सकारात्मक दृष्टिकोण के कारण वस्त्र निर्माण से जुड़े ये संगठन और अधिक प्रभावी और समृद्ध हुए। इसलिए इनके द्वारा देश और समाज के हित में अनेक कार्य किए जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

**प्रमुख शब्दः श्रेणी संगठन, सहकारिता, शिल्प, मौर्योत्तर ।**

आज आर्थिक जीवन में सर्वत्र सहकारिता की प्रधानता है। सहकारिता का अर्थ है 'सहयोग'। सहकारिता की यह प्रवृति भारत में अति प्राचीनकाल से ही किसी एक क्षेत्र में न होकर लगभग सभी क्षेत्रों में विद्यमान थी। नगरीय जीवन एवं अर्थव्यवस्था का विकास होने के साथ-साथ यह सहकारिता व्यापारिक क्षेत्र के बाद विभिन्न शिल्पों और उद्योगों में दिखाई देती है। जिसके परिणामस्वरूप शिल्पियों तथा अन्य व्यवसायियों ने अपनी सुविधानुसार समान व्यवसाय करने वाले किन्तु भिन्न-भिन्न जातियों के सदस्यों के साथ बिना जातिगत भेदभाव के अपने-अपने संगठन या संघ बनाये । इन संगठित समूहों को श्रेणी, संघ, गण, कुल, पुग निकाय आदि कहा जाता था। इन संघों के कारण ही शिल्पियों को आपसी लाभ के साथ-साथ व्यवसाय की सुरक्षा, शिल्प के एकाधिकार, कार्यकुशलता का विकास और पारस्परिक सहायता जैसे लाभ मिले। वस्त्र उद्योग के सन्दर्भ में श्रेणी संगठन का विशेष महत्व इसलिए है क्योंकि भारत में कृषि के व्यवसायीकरण के उपरांत लोगों का एक बड़ा वर्ग वस्त्र उद्योग के क्षेत्र से जुड़ा था। विवेच्य काल में वस्त्र निर्माण

से जुड़े शिल्पों जैसे कताई-बुनाई, रंगाई, धुलाई व सिलाई आदि में भी अन्य शिल्पों के समान सहकारिता की भावना विद्यमान थी। इसी सहकारिता के कारण वस्त्र-उद्योग एक उन्नत एवं विकसित उद्योग बन पाया, इससे जुड़े कारीगरों ने उच्च कोटि के विश्वप्रसिद्ध उत्पादों को निर्मित किया तथा दीर्घकाल तक भारतीय अर्थव्यवस्था को गतिमान बनाये रखने में सहयोग दिया। वस्त्र उद्योग से जुड़े इन संघों के अपने नियम होते थे, जो राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त होते थे। राजा भी इन संघों के नियमों और इसके प्रतिनिधियों का आदर करता था। प्रस्तुत शोध-पत्र में मौर्योत्तर काल से गुप्तकाल तक वस्त्र उद्योग के संगठनात्मक स्वरूप को उजागर करना तथा राजनीतिक बदलावों के कारण इस उद्योग से सम्बन्धित संगठनों में समयानुसार आए परिवर्तनों और प्रभावों आदि को चिन्हित करना प्रमुख उद्देश्य है।

विवेच्य काल से पूर्व सिन्धु सभ्यता में शिल्पों की विभिन्नता और विशिष्टता तथा विभिन्न पुरास्थलों से मिले प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष साक्ष्यों से यह अनुमान लगाया जाता है कि इस सभ्यता में वस्त्र-निर्माण तथा अन्य शिल्पों से जुड़े कारीगर मिलजुल कर सहकारिता की भावना से कार्य करते रहे होंगे। परन्तु किसी स्पष्ट प्रमाण के अभाव में इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना सम्भव नहीं है।[1] वैदिक साहित्य में वस्त्र उद्योग तथा अन्य उद्योगों का अस्तित्व होने के बावजूद किसी भी शिल्प अथवा व्यवसाय के संगठित होने के साक्ष्य धुंधले तथा अस्पष्ट हैं तथा इन्हें व्यावसायिक संगठन समझने में प्रायः मतभेद है।[2] वैदिक काल के साक्ष्यों के उपरान्त महाकाव्यों पाणिनी की अष्टाध्यायी, धर्मसूत्रों, जातक कथाओं और बौद्ध साहित्य में वस्त्र निर्माण से सम्बन्धित संगठनों के स्पष्ट विवरण मिलते है।[3] मौर्य काल में सत्ता के केन्द्रीकरण के बावजूद वस्त्र निर्माण व अन्य शिल्पों से जुड़ी श्रेणियों का समुचित विकास हुआ। इस काल तक आते-आते केवल कारू (शिल्पी) ही नहीं अपितु कर्मकार (मजदूर) भी संगठित रूप में कार्य करने लगे थे।[4]

मौर्योत्तर काल में शिल्पियों और उद्योगों के संगठनों के ऊपर से मौर्य काल में लगाए सभी प्रतिबन्ध हट गए और श्रेणियों के नियमों व रीति-रिवाजों के हितों की रक्षा को राजा के कर्त्तव्यों में शामिल कर लिया गया। साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्यों के पता चलता है कि इस काल में व्यवसायों और दस्तकारों की विविधता के कारण श्रेणियों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई। महावस्तु में 36 और मिलिन्दपन्हों में 75 प्रकार के व्यवसायों का उल्लेख इस बात को सिद्ध करता है।

इस काल में वस्त्र उद्योग से जुड़े कारीगरों के अनेक संगठन थे, जो राज्य का संरक्षण प्राप्त कर उन्नत अवस्था को प्राप्त कर चुके थे।[5] महावस्तु में वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित कपास, कोशेय, ऊन, सन, भंगा आदि के अतिरिक्त कर्पासिक (सूत विक्रेताओं), उर्णवायक (कपास और ऊनी वस्त्रों का बुनकर), चैलधोबक (धोबी), रक्तरजक (लाल रंग के वस्त्र रंगने वाला), रजक (रंगरेज) तन्तुवाय (जुलाहा) और सूचिक (दर्जी) की श्रेणियों का उल्लेख मिलता है।[6] मिलिन्दपन्हों में सूत की कताई तथा बुनाई दो पृथक उद्योगों के रूप में वर्णित है, जो इस काल में वस्त्र उद्योग के विकास एवं विशिष्टीकरण को प्रमाणित करते है।[7] मनु द्वारा बुनकरों (तन्तुवाय) और धोबी के व्यवसाय के सम्बन्ध में विस्तृत दिशा-निर्देश और नियम इन व्यवसायों की उन्नत अवस्था को प्रकट करते हैं, जो अवश्य ही संगठित भी थे।[8] मनु द्वारा रंगकारों (रंग निर्माता) की अलग गली का वर्णन इस शिल्प से जुड़े कारीगरों के क्षेत्रीकरण का प्रमाण है।[9] याज्ञवल्क्य स्मृति में भी रजक

(वस्त्र रंगने वाला) और रंगावतारी (स्त्री रंगरेज) के विवरण मिलते है।[10] पंतजलि ने रजक द्वारा लाख, रोचना (हरताल), नीली, पीत, हरिद्रा तथा महारजन आदि रंगों से वस्त्रों को रंगे जाने का वर्णन भी रंगरेजी की कला में विकास और विशिष्टीकरण का प्रमाण है।[11]

अभिलेखिय साक्ष्यों में सांची, भरहूत, बोधगया और मथुरा के अनेक अभिलेख बुनकरों (शोटिक तथा कोलिकानिकाय) तथा अन्य व्यवसायों के श्रेणी प्रमुखों द्वारा दिये दान का उल्लेख करते है,[12] जो इस काल में इन श्रेणियों की आर्थिक सम्पन्नता और खुशहाली का प्रतीक था। 120 ई. का नहपान के जमाता उषावदात का अभिलेख बहुत महत्वपूर्ण है जिसमें गोर्वधन के जुलाहों की एक श्रेणी का उल्लेख है।[13]

गुप्तकाल में शांति और सुव्यवस्था के कारण श्रेणी संगठन पूर्ववर्ती कालों से अधिक विकसित, प्रभावी एवं समृद्ध हो गए थे। अमरकोष में श्रेणी को राज्य के अंगों में शामिल किया गया है।[14] श्रेणियों के संविधान, कार्य समिति एवं अन्य पक्षों से सम्बन्धित गुप्तकालीन स्मृतियों के विवरण पूर्ववर्ती सभी विवरणों से अधिक विस्तृत होने के साथ-साथ श्रेणी संगठनों के अधिक पक्ष में भी है। नारद ने श्रेणियों के नियमों एवं परम्पराओं को राजा द्वारा मान्यता प्रदान किये जाने की बात कही है।[15] बृहस्पति ने तो यहाँ तक कहा कि श्रेणी के रीति रिवाजों आदि को न मानने वाले शासक से उनकी प्रजा भी विरक्त हो जाती है और उसकी सेना तथा राजकोष के लिए संकट की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।[16] ये उल्लेख श्रेणियों के सशक्तिकरण और प्रभाव को रेखांकित करते है।

गुप्तकालीन साहित्य एवं अभिलेखों से वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित अनेक संगठनों की जानकारी प्राप्त होती है। जम्बूदीपप्रज्ञप्ति में वस्त्रों की रंगाई, धुलाई और सिलाई का कार्य करने वाले रंगरेजों, धोबियों और दर्जियों के संगठनों का उल्लेख हुआ है, जिनकी गणना 18 श्रेणियों में होती थी।[17] रंगाजीव एवं रजिका (स्त्री रंगरेज) का उल्लेख इस काल में रंगरेजों के व्यवसाय के विशिष्टीकरण को सिद्ध करता है।[18] दर्जियों की अपनी अलग श्रेणियों थी, दर्जी के लिए तुन्नकाय[19] तथा सूचिक[20] शब्द प्रयुक्त हुए हैं। अभिलेखीय साक्ष्यों में कुमारगुप्त प्रथम की मंदसौर प्रशस्ति में पट्टवायों की श्रेणी (रेशम बुनकर) का उल्लेख मिलता है।[21]

वस्त्र निर्माण से जुड़ी श्रेणियां जहां अन्य श्रेणियों के समान अपने व्यवसाय का संगठित रूप से संचालन करती थी, वहीं आधुनिक बैंकों के समान दूसरे लोगों का रूपया धरोहर के रूप में रखकर उस पर सूद देती थी, जिसको किसी धार्मिक कार्य में लगाया जाता था। समाज में श्रेणियों की इतनी प्रतिष्ठा थी कि राजा भी उनके पास धन जमा कराते थे । 120 ई. के नासिक अभिलेख से पता चलता है कि उषावदात ने गोवर्धन के जुलाहों की एक श्रेणी में 2000 कार्षापण और दूसरी में 1000 कार्षापण 12 प्रतिशत और 9 प्रतिशत ब्याज की दर से जमा कराये थे। दो हजार कार्षापण का ब्याज भिक्षुओं के वस्त्रों पर खर्च किया जाता था और एक हजार का ब्याज उनके अन्य व्यय के लिए रखा जाता था।[22] मन्दसोर अभिलेख से ज्ञात होता है कि रेशम बुनकरों की एक श्रेणी ने दशपुर नगर में 436 ई. में एक भव्य सूर्यमंदिर का निर्माण कराया था और 472 ई. में इसके क्षतिग्रस्त भाग की मरम्मत भी करायी थी।[23] ये उल्लेख वस्त्र-उद्योग से जुड़ी श्रेणियों की प्रतिष्ठा, प्रभाव व आर्थिक सम्पन्नता को सिद्ध करते है।

इस प्रकार विवेच्य काल में वस्त्र उद्योग का संगठनात्मक स्वरूप प्रत्येक दृष्टिकोण से उन्नत अवस्था में था। मौर्यकालीन राजकीय नियंत्रण से मुक्त होने के बाद वस्त्र निर्माण से सम्बन्धित शिल्पों की श्रेणियों की साख और प्रतिष्ठा में निरन्तर वृद्धि होती गई, जिससे वे आर्थिक रूप से समृद्ध हुई और उन्होंने राज्य की आर्थिक मदद करने के साथ-2 अन्य जनकल्याणकारी कार्यों में अपना सक्रिय सहयोग दिया । इस सहकारिता के कारण ही लम्बे समय तक वस्त्र उद्योग से जुड़े शिल्पों की उन्नत अवस्था को बनाये रखा जा सका।

## संदर्भ


1. देवेन्द्र कुमार गुप्ता, प्राचीन भारत में व्यापार, पृ. 51
2. ए.एल. बाशम, दि वण्डर दट वाज इण्डिया, पृ. 28
3. देवेन्द्र कुमार गुप्ता, पूर्वोद्धृत, पृ. 52-55
4. अर्थशास्त्र, 3.14; आर.एन.स्लेटर, अर्ली इण्डियन इकोनोमिक हिस्ट्री, पृ. 403
5. किरण कुमार थपल्याल, गिल्डस् इन एंशियंट इण्डिया, पृ. 29
6. महावस्तु, 111, पृ. 113, 442
7. मिलिन्दपन्हों, 331
8. मनुस्मृति, 8.396; 8.397
9. वही, 4.216
10. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.164; 1.161
11. महाभाष्य 3.1.1; प्रभुदयाल अग्निहोत्री, पतंजलि कालीन भारत, पृ. 317
12 एपिग्राफिया इण्डिका-II, पृ. 378; VIII, 82-83
13. वही, VIII, 82-86
14. अमरकोष, 2.8.18
15. नारद स्मृति 10.2
16. बृहस्पति स्मृति, 2.28
17. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, 3.10
18. श्याम मनोहर मिश्र, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, पृ. 153
19. अमरकोष, 2.10
20. बृहत्संहिता, 10.19
21. जितेन्द्र यादव, प्राचीन भारत में व्यापार, पृ. 130
22. पी.सी.जैन, लेबर इन एंशियंट इण्डिया, पृ. 201; देवेन्द्र कुमार गुप्ता, पूर्वोद्धृत, पृ. 58
23. आर.सी. मजुमदार, कारपोरेट लाईफ इन एंशियंट इण्डिया, पृ. 66-67; जितेन्द्र यादव, पूर्वोद्धृत, पृ. 136